भारतीय संघ : अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध

मनीष वशिष्ठ,

शोधार्थी,

राजनीति विज्ञान, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

संघ व्यवस्था एक समझौता है, विभिन्न घटक राज्यों में सामंजस्य स्थापित करके नई समन्वयात्मक राजनीतिक व्यवस्था है। संघ व्यवस्था में न केवल केन्द्र–राज्य सम्बन्ध ही मधुर होने चाहिए अपितु घटक राज्यों में आपसी सम्बन्ध भी सौहार्द्रपूर्ण होने चाहिए। संघ की सरलता केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की सहजता एवं सामान्यता पर ही निर्भर नहीं करती अपितु इस तथ्य पर भी निर्भर करती है कि घटक राज्यों के आपसी सम्बन्ध कितने मधुर हैं? यदि बिहार में अकाल पड़े और पंजाब उसकी मदद के लिए दौड़े, गुजरात में बिजली की कमी आ जाये और राजस्थान उसकी सहायता के लिए तैयार रहे, आन्ध्र प्रदेश में तूफान आये और सभी राज्य उसकी मदद के लिए तैयार रहें तो निश्चित ही भारतीय संघ में अन्तर्राज्यीय सहयोग की भावना सुदृढ़ होगी किन्तु यदि घटक राज्यों में सीमाओं को लेकर, नदी–पानी वितरण को लेकर, भाषा को लेकर विवाद और मतभेद उत्पन्न होते रहते हैं तो अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध तनावपूर्ण बनते जाते हैं। यह एक विडम्बना है कि आज एक राज्य में अन्य राज्यों का नौकरी–पेशा या धन्धा करने वाला व्यक्ति बाहरी समझा जाता है। क्या संकुचित क्षेत्रीय भावनाओं के विचार से घटक राज्यों के आपसी सम्बन्ध प्रभावित नहीं होंगे ?

भारतीय संविधान में कहीं पर भी 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। 'संघ' शब्द के स्थान पर 'राज्यों का संघ' शब्द के प्रयोग का स्पष्टीकरण देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि 'यद्यपि भारत एक संघ राज्य है, लेकिन यह संघ राज्य किसी प्रकार से राज्यों के पारस्परिक समझौते का परिणाम नहीं है।'' वस्तुतः राज्यों के पारस्परिक समझौते का परिणाम न होने के कारण ही भारतीय संघ में अनेक छुटपुट मामलों को लेकर अन्तर्राज्यीय विवाद उत्पन्न हुए, जिसके फल–स्वरूप केन्द्रीय सरकार को राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा जिससे न केवल संघीय केन्द्रीयकरण में वृद्धि हुई अपितु राज्यों की स्वायत्तता भी प्रभावित हुई है।

भारतीय संघ में अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों का विवेचन करते समय यह देखना होगा कि अन्तर्राज्यीय विवाद के प्रमुख मुद्दे क्या हैं ? अन्तर्राज्यीय सहयोग के मुख्य–मुख्य सूत्र क्या हैं ? अन्तर्राज्यीय सहयोग की दिशा में केन्द्रीय सरकार की क्या भूमिका रही है ?

अन्तर्राज्यिक व्यापार एवं वाणिज्य

हमारे संविधान निर्माताओं ने अन्तर्राज्यिक वाणिज्य एवं व्यापार सम्बन्धी धाराओं का प्रारूप तैयार करते समय अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के संघो के अनुभव से बहुत लाभ उठाया। अन्तर्राज्यिक वाणिज्य तथा व्यापार की स्वतन्त्रता का उद्देश्य यह है कि देश में वाणिज्य एवं व्यापार का यथा सम्भव विकास हो सके तथा विभिन्न राज्यों द्वारा लगाए गये कृत्रिम प्रतिबन्धों द्वारा इस विकास की राह में बाधा उत्पन्न न की जाए। अनुच्छेद 301 के अनुसार 'भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में व्यापार–वाणिज्य एवं संसर्ग की स्वतन्त्रता होगी।' अनुच्छेद 302 के अनुसार लोकहित की दृष्टि से संसद भारत राज्य–क्षेत्र के किसी भी भाग में इस

स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। इस उपबन्ध का उद्देश्य भारत सरकार को माल के आवागमन पर सन्तुलित अर्थ व्यवस्था के रक्षक की दृष्टि से प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति प्राप्त है। इस सम्बन्ध में संसद द्वारा बनाये गये कानून विभेदकारी नहीं होने चाहिए अर्थात् एक राज्य को दूसरे राज्य पर वरीयता प्रदान नहीं करनी चाहिए, किन्तु जब देश का एक भाग अभावग्रस्त हो तो उस स्थिति का सामना करने के लिए संसद विभेदकारी कानून भी बना सकती है। अनुच्छेद 304 के अनुसार एक राज्य की सरकार दूसरे राज्य से आयात किये माल पर वही कर लगा सकती है जो उस राज्य में उत्पादित उसी प्रकार के माल पर लगाया गया हो। लोकहित में राज्य विधानमण्डल को यह सत्ता प्राप्त है कि वह राज्य के साथ या राज्य में वाणिज्य और व्यापार की स्वतन्त्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सकता है। यहाँ पर असाधारण परिस्थितियों में अन्तर्राज्यिक व्यापार एवं वाणिज्य को विनियमित करने की विवेकगत सत्ता राज्यों को प्रदान की गयी किन्तु यह सत्ता केन्द्रीय नियन्त्रण में है क्योंकि इस उद्देश्य का विधेयक विधानमण्डल में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। अन्तर्राज्यिक व्यापार से सम्बन्धित अनुच्छेदों का पालन करवाने के लिए संसद अनुच्छेद 307 के अन्तर्गत पदाधिकारी नियुक्त कर सकती है।

संविधान द्वारा राज्यों को माल के क्रय तथा विक्रय पर कर लगाने की सत्ता प्रदान की गई है। किन्तु इस शक्ति द्वारा राज्यों को अन्तर्राज्यिक वाणिज्य एवं व्यापार की स्वतन्त्रता पर कुप्रभाव डालने की शक्ति न मिले, इसलिए अनुच्छेद 286 द्वारा यह उपबन्धित किया गया कि राज्यों को ऐसे माल के क्रय तथा विक्रय पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं होगा जो (क) उस राज्य के बाहर क्रय अथवा विक्रय हुआ हो। अथवा जो (ख) भारत के राज्य क्षेत्र में आयात से अथवा निर्यात के लिए क्रय अथवा विक्रय हुआ हो। इस अनुच्छेद की धारा 2 के अनुसार अन्तर्राज्यिक व्यापार एवं वाणिज्य में होने वाले क्रय तथा विक्रय पर कोई राज्य संसद की अनुमति के बिना कर नहीं लगाएगा।[1]

संविधान के इन प्रावधानों के अधीन राज्यों द्वारा जो बिक्री कर विधियाँ लागू की गयीं, इन्हें क्रियान्वित करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। इससे राज्य के बीच गम्भीर विवाद उत्पन्न हुआ और मामले उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय तक गये। उच्चतम न्यायालय भी उनकी सर्वसम्मत व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाया। इसके फलस्वरूप संविधान का छठा संशोधन हुआ तथा इसके अन्तर्गत संसद ने सन् 1956 में केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम पारित किया। तब से यह जटिल विषय इस विधि के अनुसार प्रशासित हो रहा था। वर्तमान में भारत में 1 जुलाई ,2017 से वस्तु व सेवा कर (जीसएटी) लागू किया गया है। इसके सम्बन्ध में 30 जून की मध्यरात्रि को पार्लियामेंट के केन्द्रीय कक्ष में एक भव्य आयोजन किया गया, जिसमें देश के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित हुए थे। इसकी **'एक देश' एक कर, एक बाजार'** की दृष्टि की सराहना की गई। तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने इसे राष्ट्र की परिपक्वता की बुद्धिमता का परिचायक व उसके प्रति भेंट–स्वरूप माना है। (Tribute to wisdom of India's Maturity) यह सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) का एक उत्तम नमूना है, क्योंकि केन्द्र व राज्यों ने मिलकर इसकी प्रस्थापना की है। यह देश के 'आर्थिक एकीकरण' का एक ज्वलंत उदाहरण है। प्रधानंमत्री ने इसे **'एक अच्छा व सरल कर'** (Good & Simple Tax) बतलाया है। ऐसा कह कर उन्होंने G व S अक्षरों का अपने सहज ढंग से प्रयोग किया है। इसमें प्रारम्भ में कुछ बाधाऐं अवश्य आएंगी, लेकिन आगे चलकर जीएसटी भारत में कर–क्रांति का एक अग्रदूत बनकर उभेरगा, इसमें किसी को सदेंह नही होना चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था का संपूर्ण

रूपरंग ही बदल जाएगा तथा वह काफी निखर उठेगा।

जीएसटी की सर्वप्रथम चर्चा तत्कालीन वित्त सचिव विजय केल्कर ने 2003 में FRBM पर अपनी रिपोर्ट में की थी। उस समय देश में वाजपेयी सरकार थी, न कि कांग्रेस। लेकिन पूर्व वित्तमंत्री पी चिदम्बरम् ने भी 2006 में जीएसटी का उल्लेख किया था, और 2010 तक इसे लागू करने का सकेंत भी दिया था। लेकिन इसका क्रियान्वन निरंतर टलता गया। बीच में राजनीतिक कारणों से जीएसटी का विरोध भी होता रहा । लेकिन अन्ततोगत्वा 1 जुलाई, 2017 से, इसे लागू किया गया, और समझदारी इसी में है कि इसे कामयाब बनाया जाए, इसकी कमियों को दूर किया जाए और सभी सम्बद्ध पक्षों द्वारा इसकी स्वीकार्यता बढ़ाने का सतत् प्रयास जारी रखा जाए, ताकि देश विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर हो सके। स्मरण रहे कि यह किसी एक राजनीतिक दल के प्रयास का प्रतिफल नहीं, बल्कि समस्त दलों, समस्त राज्यों व समस्त कर – विशेषज्ञों की सूझबूझ का एक परिणाम है। इस दृष्टि से इसके मॉडल, मुख्य लक्षणों व संचालन पर विचार किया जाना चाहिए। यह सहकारी संघवाद का अप्रीतम उदाहरण है। इससे राज्यों में व्यापारिक करों की एकरूपता आवेगी।

अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध– नदी–पानी विवाद

भारतीय संविधान राज्यों को यह शक्ति प्रदान करता है कि ये अपने–अपने क्षेत्र में जल स्त्रोतों का विकास करें। इस शक्ति के परिणामस्वरूप यदि राज्य अपने क्षेत्र में जल स्त्रोतों के विकास हेतु कोई कार्यक्रम बनाता है तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से पड़ौसी राज्यों पर पड़ता है और इससे भारतीय संघ के राज्यों में अन्तर्राज्यीय जल–विवाद उत्पन्न हुए है।[2] संविधान निर्माता इस तथ्य से परिचित थे कि नदी–पानी विवाद भविष्य में उग्र रूप धारण कर सकते हैं। उन्होंने जहाँ 'सिंचाई' को राज्य सूची में रखा वहीं संविधान के अनुच्छेद 262 में यह व्यवस्था कर दी कि यदि राज्यों में नदी–पानी के उपयोग, वितरण, नियन्त्रण अथवा और किसी आधार पर विवाद उत्पन्न होते हैं तो संसद पंचनिर्णय की व्यवस्था करके उनके समाधान का मार्ग खोजेगी।[3] ऐसे विवादों को राज्य सर्वोच्च न्यायालय अथवा और किसी न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे।[4] संविधान की मंशा के अनुसार संसद ने सन् 1956 ई. में अन्तर्राज्यीय जल–विवाद अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम में यह प्रावधान था कि यदि राज्य सरकारों की तरफ से निवेदन किया जाये अथवा केन्द्रीय सरकार का यह अभिमत हो कि राज्यों के मध्य नदी–पानी विवाद को आपसी वार्ता द्वारा हल किया जाना सम्भव नहीं है तो केन्द्रीय सरकार न्यायाधिकरण की नियुक्ति करेगी। प्रारम्भ में यह व्यवस्था थी कि ऐसे न्यायाधिकरण में एक व्यक्ति उच्च अथवा उच्चतम न्यायालय का कार्यरत अथवा सेवा निवृत न्यायाधीश हो सकेगा। उसकी नियुक्ति भारत में मुख्य न्यायाधीश करेंगे। सन् 1968 में अधिनियम में संशोधन कर यह व्यवस्था कर दी गयी है कि ऐसे न्यायाधिकरण में अधिकतम तीन न्यायाधीश हो सकेंगे।[5]

अन्तर्राज्यीय नदी तथा नदी योजनाओं के सफल संचालन, नियन्त्रण तथा विकास हेतु विधि बनाने की शक्ति भी संसद में निहित की गयी है।[6] संविधान के तहत अपने इस दायित्व के निर्वाह हेतु संसद ने नदी मण्डल अधिनियम, 1956 पारित किया। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि सम्बधित राज्य सरकारों से परामर्श करके अन्तर्राज्यीय नदियों के संचालन एवं विकास हेतु नदी मण्डल की रचना करे। अभी तक किसी भी अन्तर्राज्यीय नदी के लिये नदी मण्डल का गठन नहीं किया गया है। वस्तुतः अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, विवादों के समाधान की दिशा में पेशकश करता है तो नदी मण्डल अधिनियम विवादों को उत्पन्न होने से रोकता है।[7]

अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत तीन नदी–पानी विवाद समाधान खोजने हेतु विभिन्न न्यायाधिकरणों को सौंपे गये। कृष्णा नदी के जल सम्बन्धी विवाद का हल ढूँढ़ने के लिए 'कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण' गठित किया गया।[8] इस विवाद का सम्बन्ध महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश से था। कृष्णा नदी महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट में होती हुई कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश में बहती है तथा इस बात को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ कि तीनों राज्यों में पानी का बँटवारा किस आधार पर हो। 29 मई, 1976 को 'कृष्णा जल विवाद न्यायाधिकरण' ने कृष्णा नदी के जल बँटवारे के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय देकर महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश के मध्य पिछले सात वर्षों के झगड़े के इस मुद्दे का समाधान प्रस्तुत कर दिया।[9] इससे पूर्व तीनों ही राज्यों ने 14 अप्रेल, 1976 को औपचारिक रूप से इस बात की भी स्वीकृति प्रदान कर दी कि कृष्णा नदी से कुछ पानी तमिलनाडु को जलाभाव के संकट से उबारने के लिए देंगे। यह अन्तर्राज्यीय सहानुभूति का उत्कृष्ट उदाहरण है। 4 मई 1990 को सर्वोच्च न्यायालय के केन्द्रीय सरकार को निर्देश दिया है कि कावेरी जल विवाद (तमिलनाडु–कर्नाटक के मध्य) को निपटारे हेतु एक माह के भीतर न्यायाधिकरण का गठन करे।

गोदावरी नदी के जल सम्बन्धी विवाद का हल ढूँढ़ने के लिए 'गोदावरी जल विवाद न्यायाधिकरण' गठित किया गया। इस विवाद का सम्बन्ध कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा आन्ध्रप्रदेश से था। नर्मदा नदी के जल सम्बन्धी विवाद का समाधान ढूँढ़ने के लिए 'नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण' का सन् 1969 में गठन किया गया था।[10] अमरकंटक से अरब सागर तक पहुँचने वाली, एक हजार तीन सौ बारह किलोमीटर लम्बी 'नर्मदा' मध्यप्रदेश की प्रमुख नदी है। वह गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र के क्षेत्रों से होकर बहती है। कई वर्षों से इन राज्यों के आपसी विवाद के कारण इस नदी का पानी खेतों के काम आने के बजाय बर्बाद होता रहा है।यह जल विवाद सबसे पहले 1969 में न्यायाधिकरण को सौंपा गया था। सन् 1972 में चारों राज्यों के मुख्य मन्त्रियों के बीच समझौता होने पर मामला वापस ले लिया गया। मगर दो वर्ष बाद समझौता टूट गया और विवाद पुनः न्यायाधिकरण के हवाले कर दिया गया। चार वर्षों के परिश्रम के बाद अगस्त 1978 में न्यायाधिकरण ने निर्णय दिया। फैसले के अनुसार 2 करोड़ 80 एकड़ फुट क्षमता में से मध्य प्रदेश को 1 करोड़ 82 लाख एकड़ पानी दिया जायेगा शेष को क्रमगत रूप से न्यूनतम जल गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान को मिलता रहेगा। नर्मदा विवाद में करोड़ों रूपये बर्बाद होने के बावजूद कौन सन्तुष्ट है? गुजरात और मध्यप्रदेश के कतिपय राजनीतिज्ञों ने इस निर्णय पर चिन्ता व्यक्त करते हुए आन्दोलन की ही धमकी दे डाली। क्षेत्रीय भावनाओं को उभार कर एक दूसरे के खिलाफ आन्दोलन की धमकी देने से किसका नुकसान होगा?[11] 12 दिसंबर 1979 में अधिवक्ता ने अपना प्रचार अधिसुचित किया व सरदार सरोवर बाँध की ऊँचाई का फैसला हुआ।

हरियाणा और पंजाब के मध्य रावी–व्यास नदी के जल बँटवारे का प्रश्न पिछले कई वर्षों से अत्यन्त विवादास्पद बन गया था। कुछ समय पूर्व केन्द्रीय सरकार के सौजन्य से इस विवाद को हल किया गया किन्तु फिर भी रावी–व्यास नदी के जल विवाद पर गतिरोध समाप्त नहीं हुआ। कावेरी नदी के जल के बँटवारे को लेकर तमिलनाडु, कर्नाटक तथा केरल राज्यों के मध्य विगत कई वर्षों से गम्भीर विवाद चल रहा था। 27 अगस्त, 1976 को संसद में यह घोषणा की गई कि तीनों सम्बन्धित राज्य तथा केन्द्रीय सरकार मिलकर एक समिति का गठन करेंगे। यह समिति कमी वाले दिनों में पानी के बँटवारे हेतु योजना बनायेगी और इस प्रकार समस्या का हल खोजेगी। उड़ीसा तथा बिहार के मुख्य मन्त्रियों ने 25 अक्टूबर, 1976 को सुवर्ण रेखा

नदी क जल बँटवारे की समस्या का समाधान आपसी वार्ता द्वारा कर लिया।

यह सच है कि नदी–पानी विवादों को लेकर भारतीय संघ के राज्य में उग्र तनाव एवं मतभेद बढ़े है। ऐसे ही कुछ विवादों को लेकर वर्षों तक सम्बन्धित राज्यों में मधुर सम्बन्ध नहीं रहे। कतिपय ऐसे विवादों को वर्षों बाद हल कर लिया गया और कुछ विवाद आज भी विद्यमान है। किन्तु इसके यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि नदी–पानी क्षेत्र में राज्यों में अन्तर्राज्यीय सहयोग का अभाव है, तथ्य तो यह है कि इस क्षेत्र में विवादों की अपेक्षा राज्यों में सहमति और सहयोग के उदाहरण ही अधिक मौजूद हैं। नदी–पानी क्षेत्र में राज्यों में जितने भी समझौते हुए हैं वे यह इंगित करते हैं कि राज्य आपसी सहयोग द्वारा समूचे राष्ट्र के आर्थिक विकास में गहरी रूचि रखते है। कतिपय महत्वपूर्ण योजनाएँ, जिनमें अन्तर्राज्यीय सहयोग का परिचय मिलता है, अधोलिखित हैं।

1. **भाखड़ा नांगल परियोजना** – यह पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान राज्यों के आपसी सहयोग की अद्वितीय नदी–पानी योजना है। यह सतलुज नदी के विकास हेतु भारत की बहुमुखी नदी घाटी परियोजना कही जा सकती है।

2. **व्यास परियोजना** – व्यास नदी पर इस परियोजना में पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान मिल–जुलकर काम कर रहे है।

3. **तुंगभद्रा परियोजना** – तुंगभद्रा नदी पर बाँध द्वारा आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक आपसी सहयोग से नदी जल का उपयोग कर रहे है।

4. **चम्बल परियोजना** – चम्बल नदी पर बाँध द्वारा मध्यप्रदेश और राजस्थान राज्य गजब का सहयोग कर रहे हैं। मध्यप्रदेश राज्य ने पूरा बाँध बनाया जबकि बाँध दोनों राज्य के क्षेत्र में बना है। परियोजना के प्रारम्भ में ही दोनों राज्यों में सहमति हो गयी कि सिंचाई ओर बिजली का उपयोग बराबर–बराबर रूप में करेंगे। परियोजना के हित में राजस्थान ने अपनी कुछ भूमि मध्यप्रदेश राज्य को हस्तान्तरित कर दी।

5. **दामोदर घाटी निगम** – केन्द्रीय सरकार के मार्ग निर्देशन में बिहार तथा पश्चिम बंगाल ने सक्रिय सहयोग द्वारा दामोदर घाटी योजना को सफल बनाया।

6. **गंडक परियोजना** – बिहार और उत्तरप्रदेश गंडक नदी परियोजना में मिल–जुलकर काम कर रहे है।

7. **कडाणा परियोजना** – माही नदी पर कडाणा बाँधसे गुजरात राज्य को विशिष्ट लाभ है। इसका निर्माण गुजरात द्वारा किया जा रहा है। इससे राजस्थान की 52000 एकड़ जमीन तथा 25000 परिवार प्रभावित हो रहे है। दरगाह वाला प्रसिद्ध कस्बा गलिया कोट पानी के मध्य जा रहा है, फिर भी राजस्थान ने गुजरात से पूरा सहयोग किया है। अन्तर्राज्यीय सहयोग का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।

संक्षेप में, यदि राज्य संकुचित दायरे में सोचते हैं, यदि राज्य सरकारें न्यस्त राजनैतिक स्वार्थों की दृष्टि से सोचती हैं तो राज्यों में अन्तर्राज्यीय नदियों को लेकर तनाव एवं विवाद उत्पन्न हो जाते है। यदि राज्य सरकारें राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में निर्णय लेकर आपसी सहयोग से कार्य करती हैं तो ऐसे विवादों को ने केवल हल किया जा सकता है अपितु आर्थिक लाभ उपलब्ध होते हैं। वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा अन्तर्राज्यीय नदी जृत विवाद हेतु अधिनियम में संशोधन कर दिया गया है।

वर्तमान में लोकसभा ने 25 जुलाई 2019 को अन्तरराज्यीय नदी जल विवाद (संशोधन) अधिनियम लागू किया है। इस एक्ट के अन्तर्गत राज्य सरकार केन्द्र सरकार से आग्रह कर सकती है कि वह अन्तराज्यीय नदी विवाद को अधिनिर्णय के लिए ट्रिब्यूनल को सौंपे। राज्य के अनुरोध पर

केन्द्र सरकार एक विवाद निवारण कमेटी की स्थापना कर सौहार्दपूर्ण तरीके से विवाद का हल करने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके अन्तर्गत उक्त कमेटी में विवाद हल न होने पर यह नये ट्रिब्यूनल में स्थानान्तरित हो जायेगा। एक्ट के तहत ट्रिब्यूनल को अपना फैसला तीन सालों के अंदर देना चाहिए। ट्रिव्यूनल की पीठ का फैसला सभी पत्रों पर बाध्यकारी होगा। इस प्रकार नवीन अधिनियम अन्तराज्यीय नदी जल विवाद निपटाने हेतू एक क्रांतिकारी कदम है।

अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध–सीमा विवाद

भारतीय संघ के राज्यों में अन्तर्राज्यीय सीमा विवादों ने लोगों को संकुचित क्षेत्रीयता की भावनाओं से ग्रसित कर दिया है। उदाहरण के लिए चंडीगढ़ शहर का प्रश्न पंजाब और हरियाणा के मध्य गम्भीर विवाद का विषय बना हुआ था। चंडीगढ़ को लेकर हिंसा, हड़ताल और प्रदर्शनों का अम्बार लगने लगा। इसके फलस्वरूप 29 जनवरी, 1970 को केन्द्रीय सरकार ने घोषणा की कि चंडीगढ़ पंजाब राज्य में मिलाया जायेगा और हरियाणा राज्य को मुआवजे के रूप में 114 हिन्दी भाषी गाँवों की फाजिल्का तहसील दी जायगी। आने वाले पाँच वर्षों तक चंडीगढ़ केन्द्रशासित क्षेत्र रहेगा और दोनों राज्यों की संयुक्त राजधानी भी रह सकेगा। इसके बाद इसे पंजाब राज्य को सुपुर्द कर दिया जायेगा। तब तक हरियाणा अपनी नई राजधानी बना लेगा। इस निर्णय को न तो पंजाब ने पसन्द किया और न हरियाणा के लोगों ने ही। सारे हरियाणा राज्य में इस निर्णय की प्रतिक्रिया स्वरूप हड़तालों, प्रदर्शनों और जुलसों का तूफान उमड़ आया। यथास्थिति को बनाये रखने का आश्वासन देने पर ही स्थिति सामान्य हुई।

इसी प्रकार मैसूर (कर्नाटक) और महाराष्ट्र के मध्य सीमा विवाद उग्र वना हुआ है। 5 अप्रैल, 1966 को महाराष्ट्र ने माँग की कि मैसूर कर्नाटक का मराठी भाषी क्षेत्र महाराष्ट्र में मिलाया जाना चाहिए। महाराष्ट्र विधानमण्डल के दोनों सदनों ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर केन्द्रीय सरकार से माँग की कि यदि मराठी भाषी क्षेत्रों को महाराष्ट्र में नहीं मिलाया गया तो राष्ट्र की एकता प्रभावित होगी। अक्टूबर 1976 में केन्द्रीय सरकार ने भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश मेहरचन्द्र महाजन की अध्यक्षता में एक संसदीय आयोग नियुक्त करके निवेदन किया कि वह मैसूर (कर्नाटक) – महाराष्ट्र तथा मैसूर (कर्नाटक) – केरल के सीमा विवादों की जाँच करे। मैसूर के तत्कालीन मुख्यमन्त्री एस.निजलिंगप्पा ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि उनकी सरकार मामूली सीमा समझौता करने के लिए तैयार है किन्तु यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकती कि सम्पूर्ण मराठी भाषी जिले (बीजापुर, बेलगाँव, कनारा, धारवाड़) महाराष्ट्र को सुपुर्द कर दे। इसके प्रतिउत्तर में शिव सेना ने संपूर्ण महाराष्ट्र में दक्षिणी भारतीयों के विरोध में आन्दोलन एवं प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया तमिलनाडु तथा दक्षिणी प्रान्तों में हुई और वहाँ उत्तर भारत के विरूद्ध आन्दोलन चलाये गये। इसी दौरान महाजन आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया। महाराष्ट्र के समस्त दलों ने एकजुट होकर आयोग की सिफारिशों को अमान्य घोषित कर दिया और माँग की कि विवाद का समाधान भाषायी सिद्धान्त पर किया जाना चाहिए। मैसूर के मुख्यमन्त्री का मत था कि महाजन प्रतिवेदन को क्रियान्वित किया जाना चाहिए। अन्त में इस असामंजस्यपूर्ण स्थिति में तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने घोषणा की कि इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय संसद के हाथों में सौप दिया जाये। मैसूर में इन दिनों कांग्रेस की सरकार थी, अतः स्वाभाविक रूप से उसने प्रधानमन्त्री के निर्णय का प्रबल विरोध किया। 18 दिसम्बर, 1970 को महाजन आयोग प्रतिवेदन को लोकसभा के पटल पर रखा गया। तात्कालिक गृह राज्यमन्त्री श्री के.सी.पन्त ने कहा कि सरकार महाजन आयोग प्रतिवेदन पर निर्णय नहीं ले पायी

है और संसद की इच्छा जानना चाहती है। मैसूर के विरोधी संसद सदस्यों ने सदन में धरना दिया और सरकारी कार्यवाही का प्रबल विरोध किया। मैसूर के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री पाटिल ने कहा कि केन्द्रीय सरकार महाराष्ट्र तथा केरल के दबाव के आगे झुक रही है। समूचे मैसूर में हिंसा, आतंक, प्रदर्शन और हड़ताल का वातावरण फैल गया। मैसूर विधानसभा का विशेष अधिवेशन आमन्त्रित किया गया और यह प्रस्ताव पारित किया गया कि महाजन आयोग सिफारिशों को शीघ्र क्रियान्वित किया जाये। संक्षेप में, महाजन आयोग प्रतिवेदन को लेकर के महाराष्ट्र मैसूर (कर्नाटक) में तनाव और उग्र वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच चुका था।

अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध—भाषा विवाद

भारतीय संघ में भाषागत विविधता रही है। उत्तरी और दक्षिणी राज्यों की भाषा अथवा यों कहें कि एक राज्य की भाषा दूसरे से भिन्न रही है। अंग्रेजी शासनकाल में भाषा के आधार पर कोई समस्या नहीं थी। स्वाधीनता के तुरन्त बाद मुख्य प्रश्न यह था कि देश की राष्ट्रभाषा और उसकी लिपि क्या हो तथा भाषायी अल्पसंख्यकों को किस प्रकार संरक्षण दिया जाए। संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया। भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण एवं पुनर्गठन हुआ। दक्षिणी राज्यों की सरकारें हिन्दी भाषा का विरोध करने लगीं। वे राजभाषा के रूप में हिन्दी को पसन्द नहीं करती थीं। उनका कहना था कि हिन्दी इस स्थिति में नहीं है कि वह भारत की राजभाषा बन सके। तमिलनाडु की डी.एम.के. सरकार ने तो हिन्दी और हिन्दी भाषी राज्यों के प्रति अलगाव की ही घोषणा कर दी। इसकी प्रतिक्रिया उत्तरी राज्यों में भी हुई और वहाँ अंग्रेजी भाषा के विरूद्ध वातावरण तैयार किया गया। इस प्रकार के प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और राष्ट्रीय एकता संकट में पड़ गई। जहाँ मूल सरकारी भाषा अधिनियम के अधीन हिन्दी सरकारी भाषा थी, वहाँ बुनियादी मसला यहा था कि स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू और श्री लालबहादुर शास्त्री ने अहिन्दी भाषी लोगों को जो आश्वासन दिये थे उनका पालन कैसे किया जाये। इसलिए दिसम्बर 1967 में संसद के सामने एक संशोधन बिल लाया गया जिससे सरकारी भाषा के बारे में दिए गए आश्वासनों को कानूनी स्वीकृति मिल सके। संशोधित कानून के अन्तर्गत जब तक जरूरी होगा तब तक अंग्रेजी सह–भाषा के रूप में जारी रहेगी। इससे न केवल देश की एकता सुदृढ़ होगी बल्कि हिन्दी भाषी और अहिन्दी भाषी राज्यों के बीच अधिक अच्छा संचार सम्पर्क हो सकेगा। ये वर्तमान तक चल रहा है।

अन्तर्राज्यीय सम्बन्धःमोटर परिवहन

प्रारम्भ में मोटर परिवहन के क्षेत्र में अन्तर्राज्यीय सहयोग का अभाव था। एक राज्य के वाहन दूसरे राज्यों की सीमा पर जाकर रूक जाते थे। ऐसा लगता था कि मानो आगे सीमा किसी नये राष्ट्र की सीमा प्रारम्भ होने वाली हो। मोटर परिवहन के क्षेत्र में अन्तर्राज्यीय सहयोग आवश्यक समझा गया और क्षैत्रीय परमिट योजना लागू की गयी जिससे वाहनों का एक राज्य से दूसरे राज्य में स्वतन्त्रतापूर्वक आवागमन हो सके। तदनुसार जनवरी 1971 में दक्षिणी क्षेत्र योजना, जनवरी 1973 में अक्टूबर 1975 में पश्चिमी क्षेत्र योजना, जनवरी 1974 में उत्तरी क्षेत्र योजना तथा केन्द्रीय क्षेत्र योजना लागू की गयी। यह क्षेत्रीय परमिट योजना राज्यों के सहयोग का सुन्दर उदाहरण है। बीस–सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय परमिट योजना के लागू होने से वाहन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक बिना कठिनाई जाने लगे।

अन्तर्राज्यीय सहयोग तथा केन्द्रीय सरकार की भूमिका

भारत में संविधान निर्माताओं ने सहकारी संघवाद की नींव डाली है।[12] संविधान निर्माता इस बात से परिचित थे कि संघ के घटक राज्यों में पारस्परिक सहयोग होना आवश्यक है। संविधान के अन्तर्गत राज्यों को पृथक् क्षेत्राधिकार प्राप्त है यथापि संविधान में निम्नलिखित विषयों पर केन्द्रीय सरकार एवं राज्यों के पारस्परिक सहयोग पर बल दिया गया :

प्रथम, अनुच्छेद 261 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र संघ की तथा प्रत्येक राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं, अभिलेखों तथा न्यायिक कार्यवाहियों को पूरी मान्यता दी जाएगी। इनकी प्रामाणिकता सिद्ध करने की रीति और शर्तें तथा उनके प्रभाव का निर्धारण संसद द्वारा उपबन्धित रीति के अनुसार होगा। यह भी आयोजित किया गया है कि भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग के दीवानी न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय तथा आदेश उस राज्य क्षेत्र के सभी स्थानों पर निष्पादित किए जायेंगे।

द्वितीय, अनुच्छेद 262 के अनुसार किसी अन्तर्राज्यिक नदी तथा नदी घाटी जलाशयों के प्रयोग, वितरण, विवाद या फरियाद के न्याय निर्णय के बारे में संसद विधि द्वारा व्यवस्था करेगी। ऐसे विवाद के सम्बन्ध में संसद यह भी निर्णय कर सकती है कि उच्चतम न्यायालय या अन्य कोई न्यायालय इस सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

तृतीय, अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत राज्यों के पारस्परिक सहयोग के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन किया गया है। इसकी स्थापना राष्ट्रपति करेंगे।

चतुर्थ, अन्तर्राज्यीय व्यापार वाणिज्य से सम्बन्धित संविधान के प्रावधानों के क्रियान्वयन के लिए अनुच्छेद 307 के अनुसार संसद एक प्राधिकारी की नियुक्ति करेगी तथा उसको ऐसी शक्तियाँ और कर्तव्य सौंप सकती है, जो वह आवश्यक समझे।

इस प्रकार इन शक्तियों के द्वारा केन्द्रीय सरकार अन्तर्राज्यीय सहयोग को बढ़ावा देती है। वस्तुतः ये शक्तियाँ केन्द्र की सर्वोपरि सत्ता तथा राज्यों को अनुशासित करने की योग्यता की द्योतक हैं।

अन्तर्राज्यीय परिषद् : सहकारी संघवाद

अन्तर्राज्यीय विवादों के समाधान एवं सुलह हेतु संविधान में संस्थानात्मक अभिकरण का प्रावधान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 236 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को प्रतीत होता है कि सार्वजनिक हित में आवश्यक है तो अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जा सकेगी। इस परिषद् का प्रमुख कार्य 'राज्यों के मध्य विवादों का परीक्षण करना तथा उन पर परामर्श देना है।' प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना पर जोर दिया था। यदि इस परिषद् में प्रधानमन्त्री, कुछ वरिष्ठ केन्द्रीय मन्त्रियों तथा सभी राज्यों के मुख्यमन्त्रियों को सम्मिलित कर लिया जाये तो यह एक उच्च सत्ता प्राप्त संस्था हो जायेगी। यह परिषद् न केवल आपसी विचार–विमर्श का स्थायी मंच होगी अपितु राज्यों के नेताओं में औपचारिक सम्बन्ध स्थापित करने में भी मदद करेगी। ऐसी परिषद् कई उपयोगी कार्य भी कर सकेगी, जैसे (अ) आपसी सहयोग के विषयों पर विचार–विमर्श, (ब) आपसी लाभ के विषयों पर विस्तृत नीति सम्बन्धी सिफारिशें करना, (स) अन्तर्राज्यीय सीमाओं के निर्धारण हेतु प्रस्ताव रखना, (द) उन क्षेत्रों की खोज करना जहाँ राज्यों में अधिकतम सहयोग तथा सामंजस्य हो सके।[13] यदि सम्बन्धित राज्य अपने किसी विवाद को जैसे

सीमा विवाद या नदी—पानी विवाद को परिषद् के सामने रखना चाहें तो इससें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[14] इससे लोकमत जाग्रत करने का भी अवसर मिलेगा। आपसी विचार—विमर्श द्वारा अच्छे संतुलित निर्णय लिए जा सकते हैं और जैसा कि मोरिस जोन्स ने लिखा है—'अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध तो वस्तुतः संघवाद की सौदेबाजी में ही निर्धारित होते हैं।' सरकारी आयोग ने भी अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की सिफारिश की है। इसी आधार पर अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन किया गया है जो कि बैठकों द्वारा अपने कार्य को आगे बढ़ा रहा है।[15]

अन्तर्राज्यीय सहयोगः क्षेत्रीय परिषद

राज्यों के मध्य आपसी सहयोग एवं उसकी नीतियों में तालमेल स्थापित करने के लिए भारतीय संघ में छः क्षेत्रीय परिषदों की स्थापना की गयी।[16] इन परिषदों का मुख्य कार्य (1) आर्थिक और सामाजिक नियोजन के क्षेत्र में सामूहिक हित के विषयों पर विचार करना, (2) सीमा विवाद, भाषायी अल्पसंख्यकों एवं अन्तर्राज्यीय यातायात की समस्याओं पर विचार करना, तथा (3) राज्य पुनर्गठन से उत्पन्न समस्याओं पर विचार करना रहा है। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् अन्य परिषदों से कार्यशैली में भिन्न है। सभी क्षेत्रीय परिषदों के अध्यक्ष केन्द्रीय गृहमन्त्री है। क्षेत्र के मुख्यमन्त्री तथा प्रत्येक राज्य के राज्यपाल द्वारा मनोनीत दो अन्य मंत्री परिषद् के सदस्य होते हैं। दो क्षेत्रीय परिषदें अपनी संयुक्त बैठक भी कर सकती है ऐसी संयुक्त बैठक कम से कम दोनों क्षेत्रों में होती है। क्षेत्रीय परिषदों से सम्बन्धित खर्चा केन्द्रीय सरकार वहन करती है। ये क्षेत्रीय परिषदें परामर्श देने वाली संस्थाएँ हैं और इनसे यह अपेक्षा की गयी कि ये परिषद जहाँ एक और केन्द्र—राज्य सहयोग की भूमिका तैयार करेंगी वहीं दूसरी और अन्तर्राज्य समन्वय की आधारशिला रखेंगी। किन्तु क्षेत्रीय परिषदें राज्यों के आपसी विवादों को हल करने में प्रभावशाली निकाय नहीं हो पायीं। वस्तुतः इन परिषदों से न तो राज्यों के बीच और न ही संघ तथा राज्यों के बीच सहयोग में वृद्धि हुई है।[17] ये परिषदें आपसी तनावों को भी दूर नहीं कर पाई।[18] लेकिन इन परिषदों को क्षेत्रों की सामुहिक पुलिस, वित्तीय अधिकारियों के लिए सामुहिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, अन्तर्राज्यीय सड़क परिवहन के युक्तिकरण आदि के मामलों में सफलता मिली है।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम (1956) से गठित ये परिषदें काफी समय तक काम करती रहीं किन्तुः कांग्रेस सरकार ने इन्हें निष्क्रिय बना दिया था। जनता पार्टी शासन में प्रधानमन्त्री श्री देसाई ने परिषदों को फिर से सक्रिय बनाने की पहल की थी। अब सरकार को चाहिए कि इन संस्थाओं को क्षेत्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्णय प्रक्रिया का प्रभावी अंग बनाये जो विभिन्न क्षेत्रों में शामिल राज्यों की आर्थिक आयोजना समेत सब प्रकार की समान समस्याओं पर विचार कर सकें।[1]

भारतीय संघ में अन्तर्राज्यीय समन्वय के प्रयास

भारतीय संघ की मुख्य समस्या केन्द्र तथा राज्य एवं अन्तर्राज्यीय समन्वय की रही है। ऐसे समन्वय के प्रयास बराबर होते रहे हैं। आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने के लिए के लिए सन् 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गयी। केन्द्र—राज्य सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करने में राज्यों का भाग लेना भी अनिवार्य था। इसीलिए राष्ट्रीय विकास परिषद् (1952) की स्थापना की गयी। जब तक योजना पर राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति नहीं मिल जाती तब तक योजना प्रारूप योजना अन्तिम रूप धारण नहीं करता। राष्ट्रीय विकास परिषद् में राज्यों के मुख्य मन्त्रियों की

सदस्यता तथा योजना आयोग द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों पर उनकी स्वीकृति के कारण योजना को राज्यों की ओर से एक प्रकार की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त हो जाती थी। नार्मन.डी.पामर के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद् ने योजनाओं के निर्धारण में दृष्टिकोण की एक–रूपता एवं कार्य–संचालन में समानता उत्पन्न की है।[20]

प्रो. ए. एच. हेनसन का मत है कि भारतीय संविधान निर्माताओं के मन में स्थिति स्पष्ट नहीं थी। उन्होंने शायद नियोजन को केन्द्र एवं राज्यों के मध्य समायोजन की व्यवस्था माना हो, किन्तु उनकी यह आकांक्षा साकार नहीं हो पाई। राष्ट्रीय विकास परिषद् केन्द्र और राज्यों के बीच आपसी सहयोग और सलाह के लिए बनाई गई थी, आर्थिक योजना बनाने वालों के लिए वाद–विवाद का मंच बन कर रह गई। प्रत्येक राज्य नियोजन के लिए अधिक से अधिक साधन प्राप्त करने हेतु प्रतिस्पर्धा करने लगा। योजनाओं के निर्माण में राज्यों का सहयोग अत्यन्त सीमित रहा है। वित्तीय सहायता के लिए राज्य केन्द्र पर अधिक निर्भर हो गए। सामाजिक और आर्थिक सेवाओं के विषय में योजना आयोग एवं राज्यों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हुआ। योजना का एक परिणाम यह हुआ कि राज्यों को संवैधानिक रूप से आवंटित क्षेत्रों में भी अपने आपको निःसहाय महसूस करना पड़ा। शिक्षा, दवाइयाँ, जन स्वास्थ्य, कृषि, सहकारिता, समाज कल्याण एवं औद्योगिक आवास व्यवस्था जैसे विषयों पर राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा राज्यों की स्वायत्तता पर कुठाराघात हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में राज्य के विश्वविद्यालयों के विभागों का विस्तार कार्यक्रम केन्द्रीय सरकार से उपलब्ध धनराशि पर निर्भर करता है, प्राध्यापकों के वेतन में वृद्धि भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग पर निर्भर करता है। आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप संघीय केन्द्रीकरण इतना अधिक बढ़ा है कि के. संथानम ने स्पष्ट लिखा है 'नियोजन ने संघवाद को निरस्त नहीं किया है परन्तु केन्द्रीकरण बहुत अधिक मात्रा में आया है और नीति एवं वित्त सम्बन्धी मामलों में समूची नियोजन व्यवस्था ने राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया।[21]

केन्द्र–राज्य समायोजन की दृष्टि से राष्ट्रपति ने 'केन्द्रीय–स्वास्थ्य परिषद्', 'केन्द्रीय स्थानीय शासन परिषद्' तथा चार 'बिक्री कर प्रादेशिक परिषदों' की स्थापना की। प्रतिवर्ष राज्यपालों, मुख्यमन्त्रियों तथा राज्य के मुख्य सचिवों के नई दिल्ली में सम्मेलन होते हैं। संघ लोक सेवा आयोग के नेतृत्व में राज्य लोक सेवा आयोगों के अध्यक्षों तथा सदस्यों के सम्मेलन भी समन्वयकारी समायोजित नीतियों के निर्माण की दिशा में प्रयास है।1[22]

भारतीय संघ में अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों पर विचार करते समय उपरोक्त विवेचन से निम्नलिखित तथ्य उभरते हैः

1. भारतीय संघ के राज्यों को सांविधानिक दर्जा प्राप्त है किन्तु संवैधानिक ढाँचे में राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता देने का कहीं प्रावधान नहीं है।
2. भारतीय संघ का निर्माण कुछ इस प्रकार किया गया है कि संघीय सरकार के मामले में मध्यस्थ की भूमिका अदा करती है।
3. राज्यों के निर्माण एवं पुनर्गठन की गाथा से यह इंगित होता है कि राज्यों में छुट–पुट विषयों को लेकर विवाद उत्पन्न होना स्वाभाविक है।
4. अन्तर्राज्यीय विवादों से राष्ट्रीय एकता प्रभावित होती है।
5. यदि केन्द्र में सशक्त एवं संगठित सरकार पदारूढ़ है तो अन्तर्राज्यीय विवादों का समाधान आसान होता है।

6. यदि केन्द्र और राज्यों में भिन्न–भिन्न दलों की सरकारें होती है तो विरोध के प्रबल स्वर मुखरित होते है और यदि दोनों जगह एक ही दल की सरकारें होती हैं तो मधुर सम्बन्धों के युग का सूत्रपात होता है।
7. भारतीय संघ में अन्तर्राज्यीय वाद–विवाद न्यायालयों में नहीं गये हैं। स्पष्टतः केन्द्र प्रारम्भ से ही संवैधानिक आयोजन में दृढ़ता लिये है।
8. आपातकाल में केन्द्र ने अपनी सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभुत्व वाली भूमिका के माध्यम से अन्तर्राज्यीय विवादों को हल करने में दृढ़ता का परिचय दिया। बिहार और उड़ीसा में सुवर्ण रेखा परियोजना पर समझौता, गंडक योजना पर बिहार और उत्तर प्रदेश में समझौता, कावेरी और उसकी सहायक नदियों के जलग्रण के क्षेत्र के तीनों राज्यों– कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल द्वारा आवश्यकतानुसार पानी के पुनर्वितरण के सिद्धान्त को स्वीकार करना, कडाणा बाँध पर गुजरात और राजस्थान का समझौता आदि इसी प्रक्रिया के परिणाम थे।

इस प्रकार अन्तर्राज्यीय सहयोग व सद्भाव से भारतीय संघ मजबूती के साथ विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है तथा भारतीय जनता की खुशहाली प्राप्त हो सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. **शम्भूदयालसिंह, प्रिंसीपल एण्ड लॉ ऑफ सेल्स टेक्स** (ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, 1973), पृं. 20–41,247–254.
2. दी इण्डियन लॉ इन्स्टीट्यूट, **इण्डर–स्टेट वाटर डिस्प्यूट्स इन इण्डिया,** त्रिपाठी बम्बई, 1971, पृं. प्रीफेस।
3. **भारतीय संविधान,** सातवीं अनुसूची, संख्या 17, लिस्ट 11 तथा अनुच्छेद 262.
4. **भारतीय संविधान,** अनुच्छेद 262.
5. **दी इण्टर–स्टेट वाटर डिस्प्यूट्स** (एमेण्डमेण्ट) एक्ट, 1968, खण्ड 2.
6. **भारतीय संविधान,** सांतवी अनुसूची, सं. 57, लिस्ट।
7. दी इण्यिन लॉ इन्स्टीट्यूट, **इण्डर–स्टेट वाटर डिस्प्यूट्स इन इण्डिया,** पृं. 6.
8. **गजट ऑफ इण्डिया एक्सट्रा आडिनरी,** 10 अप्रेल, 1969, भाग दो खण्ड 3 (2)।
9. **कैरियर डायजेस्ट,** जनवरी 1977.
10. नर्मदा न्यायाधिकरण की नियुक्ति 6 अक्टूबर 1969 को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूति श्री वी. रामस्वामी की अध्यक्षता में अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत की गई।
11. मध्य प्रदेश के छः संसद सदस्यों ने कहा कि नर्मदा प्राधिकरण द्वारा दिया गया फैसला मध्य प्रदेश के हितों को ध्यान में रखकर नहीं किया गया है। मध्य प्रदेश की जनता इस फैसले को स्वीकार नहीं करेगी और इसके विरूद्ध शान्तिपूर्ण आन्दोलन करेगी। **नवभारत टाइम्स,** 16 अगस्त, 1978.
12. सुभाष काश्यप (सम्पादित): **यूनियन स्टेट–रिलेशन्स इन इण्डिया,** नई दिल्ली, 1969, पृ. 212.
13. ए. कृष्णा स्वामी, **दी इण्डियन यूनियन एण्ड दी स्टेट्स,** ऑक्सफोर्ड, 1966, अध्याय 5.
14. सुरेश कुमार शर्मा, इण्टर–स्टेट काउन्सिल एन आसपेक्ट ऑफ कोऑपरेटिव फेडरलिज्म **दी इण्डियन**

जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, जुलाई–सितम्बर 1976, पृ. 446.

15. **न्यूज लेटर,** आई. आई. पी. ए., अप्रेल 1990, पृ. 5.
16. **स्टेट्स रिआगेनाइजेशन एक्ट,** 1956, सेक्शन 21 (2).
17. श्री राम माहेश्वरी, जोनल काउन्सिल इन दि इण्डियन फेडरल सिस्टम, ए केस स्टडी, **दी इकॉनामिक वीकली,** (जुलाई 11,1965).
18. कुलदीप नय्यर **इण्डिया आपटर नेहरू,** विकास 1975,पृ. 82.
19. नन्द किशोर त्रिखा, क्षैत्रीय परिषदों की प्रभावी भूमिका, नवभारत टाइम्स, 12 सितम्बर, 1978.
20. नार्मन डी. पामर, **दी इण्डियन पालिटिकल सिस्टम,** सेकण्ड एडिशन, 1971, पृ. 190–191.
21. के. संथानाम, **डेमोकेटिक प्लानिंग : प्रोब्लम्स एण्ड पिटफाल्स,** पृ. 20.
22. **दिनमान,** 19–25 दिसम्बर, 1976, पृ. 21–22.